प्रथम अध्याय

"हिन्दी नाटकों के विकास की रूपरेखा"

प्रथम अध्याय्

हिन्दी नाटकों के विकास की रूपरेखा

प्रस्तावना : -

मानव मन कोमल भावनाओं की असंख्य जलधारा में प्रवाहित हुआ है। जब इस जलधारा का उगम बाहय् रूप से होगा तब वह अंगिक अभिनेय के रूप में अधिक यथार्थ लगेगा और उसका प्रतिबिम्ब हृदय पटल पर अंकित होगा। इस रूप को साकार करने के लिए नाटक ही एक ऐसा माध्यम है, जो मनुष्य के अंतरंग में छा जाता है। किसी व्यक्ति, कृति, वस्तु तथा अप्रत्यक्ष का अनुकरण करना ही नाटक कहलाता है।

मानव-सृष्टि के आरंभ में ही नाटक का रूप अनुकरण में निहित था। मानव में कोतूहल एवं जिज्ञासा की वृत्ति प्रारंभ से ही है। प्लेटो का कथन है, कि कला प्रकृति का अनुकरण है, तो प्रकृति ज्ञान की अनुकृति है। इसलिए कला अनुकृति की अनुकृति है। अतः नाटय्-कला भी एक अनुकरण है, जो यथार्थ दर्शनीय एवं अभिनय के रूप में प्रकट होता है। नाटक की प्रभावोत्पादक शक्ति साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा अधिक स्थायी, गहरी और व्यापक होती है, क्योंकि उनमें हम वास्तविकता का जीवन के यथार्थ का अनुभव करते हैं। दृश्य काव्य मूर्त होने से सभी उसमें समरस हो जाते हैं। नाटक में कल्पना, भावना और बुद्धि का सुन्दर परिपाक होने से हम उसका रसास्वाद ले सकते हैं। नाटक में वास्तविकता का अनुकरण रहता है। लोकहित, लोकरंजन के उद्देश्य के लिए सभी लोगों का समान रूप से मनोरंजन करनेवाला तथा विविध कलाओं से संयुक्त होने के कारण नाटक साहित्य का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण

अंग है। शास्त्रों और कलाओं की दृष्टि से भी नाटक का महत्त्व काव्यागों से श्रेष्ठ है।

हमारे भारत देश में विभिन्न जाति, धर्म तथा पंथों के लोग रह चुके हैं। अतः अपने-अपने संस्कृति के अनुसार कला का अभिनय होता रहा। प्राचीन काल में राज्याभिषेक, पुत्र-जन्मोत्सव, दुर्गापूजा, दीपावली विजय और धार्मिक पर्वों के अवसर पर नाटक खेले जाते थे। नाटक में वेद, शास्त्र, इतिहास, साहित्य, कला और दर्शन की अंगो और उपांगो का समन्वय और अभिनेय रहता हैं। इतिहास, पुराण तथा प्राचीन संस्कृति और सभ्यता का विकास नाटक द्वारा ही देखा जा सकता हैं।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसका प्रदर्शन नाटक में न हो सकें। भरतमुनि ने "नाटय्-शास्त्र" में स्पष्ट कहा गया है कि -

"न सयोगो न तत्त्वमि नाटय्ऽस्मित यन्न दृश्यते।
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।"[1]

अर्थात योग, कर्म, सम्पूर्ण साहित्य, समस्त शिल्प, शास्त्र और संसार के विविध कार्यो में कोई ऐसा नहीं है जो नाटक में दिखाया न जा सके। अतः नाटक काव्य-कला का भी सर्वश्रेष्ठ अंग है -

"काव्येषु नाटकंरम्यम् नाटकान्तेच कवित्त्वम्।"[2]

1· **नाटक - शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ ::-**

हमारा भारत देश संस्कृति-प्रधान देश है। प्राचीन से लेकर आज तक मानव ने कितने ही सांस्कृतिक खेल खेले जा चुके हैं, शायद इसी खेला का आधुनिक रूप नाटक रहा होगा। नाटक शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग "नाटय्शास्त्र" ग्रंथ में हुआ है। इसमें भरतमुनि ने "नाटय्" शब्द की व्युत्पत्ति "नट्" धातु से मानी हैं।"[3] इसका तात्पर्य "नृत्य" से माना जाता है। प्राचीन गंथ ऋग्वेद में भी "नट्" और "नृत्"

धातु का प्रयोग मिलता है।

अँग्रेजी का ड्रामा (Drama) शब्द नाटक का पर्यायवाची है। आइबर ब्राइन ने इस शब्द को यूनानी भाषा में "किया हुआ" (Action) है। "ड्रामा शब्द की व्युत्पत्ति वस्तुतः यूनानी भाषा से मानी जाती है। और यूनानी भाषा में जिस शब्द से ड्रामा की व्युत्पत्ति मानी जाती है, उसका अभिधार्थ है "कृत" अर्थात् किया हुआ।"[4] अर्थात पाश्चात्य नाटकों में कार्य की प्रमुखता है और भारतीय नाटकों में रस की।

"नाटक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की "नट्" धातु से हुई है, जिसका अर्थ है सात्विक भावों का प्रदर्शन।"[5]

नाटक को "रूपक" भी कहा गया है "अंक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर आरोप करने को "रूपक" कहते हैं।"[6]

2· **संस्कृत नाटकों की परम्परा** : -

संस्कृत साहित्य भंडार जिस प्रकार अन्य विधाओं में पूर्ण रहा है, उसी प्रकार नाट्य-साहित्य में भी इसका योगदान रहा है। इस समय के साहित्यकार का संपूर्ण ध्यान काव्य की ओर होने से एवं जनता की इसमें रुचि होने के कारण नाटक विधा की ओर ध्यान नहीं दिया गया। संस्कृत साहित्य में नाटक की परम्परा अत्यंत समृद्ध थी। 4 थी शती ई·पूर्व से प्रारंभ हुई इस परम्परा में कालिदास, अश्वघोष, शूद्रक, हर्षवर्धन आदि प्रतिभासंपन्न नाटककारों ने सहयोग दिया। कालिदास की "अभिज्ञान-शाकुंतलम्" उनकी प्रतिभा की उत्कृष्टतम कृति है। लेकिन हर्षवर्धन (7 वी शतीं) के बाद राजशेखर (10 वी शतीं) तक आते-आते संस्कृत नाटकों का -हास होता गया। पांडित्य-प्रदर्श की प्रवृत्ति अधिक होने से परवर्ती नाट्य साहित्य रंगमंच से दूर हटता गया। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश फिर हिन्दी तक आते-आते यह समृद्ध परम्परा लुप्त हो गयी।

हिन्दी नाटकों के उद्भव के पूर्व भारतेंदु तथा उनका मंडल संस्कृत की

नाटय्-प्रणाली से बहुत कुछ प्रभावित रहा। "संस्कृत नाटकों के काव्यात्मक वातावरण रूमानियन तथा टेकनीक की छाप प्रसाद के नाटकों पर स्पष्ट देखी जा सकती है। प्रसाद के परवर्ती नाटककारों की कृतियाँ भी किन्हीं अंशों में संस्कृत नाटकों से अनुप्रणित है।"[7] 'मुद्राराक्षस' संस्कृत नाटकों में यथार्थवादी दृष्टिकोण उपस्थित करनेवाला यह अत्यंत उच्च कोटि का नाटक है।

3. **रासलीला नाटकों का विकास : -**

16 वी शतीं में हित हरिवंश जी "राधा-कृष्ण" के अलौकिक रास का दर्शन हुआ। इसके अनुकरण पर उन्होंने "कृष्ण-रास-मंडल" की स्थापना की और रासलीलाओं का आयोजन किया। कृष्णलीला के नाटकों की शैली पर 'नरसिंह-लीला, 'भगीरथ लीला, प्रल्हाद लोला, दान लीला, आदि की रचना हुई। इन लीलाओं में नृत्य एवं गान की प्रधानता है। नंददास ने गोवर्धन लीला और श्यामसगाई लीला और ब्रजवासी दास ने 74 लीलाओं की रचना की। गोस्वामी के रासलीला केवल नाम मात्र है।

4. **लोक धर्मी नाटय् : -**

हिन्दी नाटकों का मूल स्त्रोत लोक - नाटक में खोजने का प्रयास किया। रासलीला रामलीला, नौटंकी के रूप में लोक रंगमंच की स्थापना हुई। इन लोक-नाटकों से बहुत कुछ प्रेरणा ग्रहण की गयी। व्यवसायिक नाटक भी 19 वी शतीं में लिखे गये।

5. **हिन्दी नाटक का विकास : -**

भरतमुनि के अनुसार त्रैलोक स्यास्य सर्वस्य नाटय् भावानुकीर्त्तनम्" अर्थात नाटक त्रैलोक्य के भावों की अनुकृति है। विभिन्न विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति धार्मिक, लौकिक एवं वेद के रूप में मानी है। भारतीय नाटकों का विकास वेदकालीन नृत्य, गीत, सोमपान, स्वगत उक्तियों और संतापों से माना जाता है। "प्राचीन भारतवर्ष में कठपुतलियों का प्रचार अवश्य था। इसके प्रमाण गुणाढ्य की बृहत् कथा, महाभारत एवं राजशेखर कृत बालनारायण में मिलते हैं, किंतु इससे सिद्ध नहीं होता कि कठपुतलियों से ही नाटय् कला का विकास हुआ। हिन्दी के प्रासंगिक नाटक

संस्कृत शैली के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहे। नाटककार विश्वनाथसिंह के 'आनंद-रघुनंदन' का प्रभाव हिन्दी नाटकों पर पडा। दशरथ ओझा लिखते हैं - "विश्वनाथजी ने सर्वप्रथम नाटकों में गद्य का शास्त्रीय रीति से प्रयोग किया। नांदी, सूत्रधार, विष्कंभक, भरतवाक्य, को हिन्दी नाटक में स्थान मिला। उन्होंने चरित्र-चित्रण और संवाद योजना में पूर्ण सफलता पाई और भविष्य के नाटककारों को एक नया पथ दिखाया।"[8]

अतः हिन्दी नाटक साहित्य का विकास निम्न गुणों में विभाजित किया जाता है -

1· भारतेंदु पूर्व युग
2· भारतेंदु युग
3· द्विवेदी युग
4· प्रसाद युग
5· प्रसादोत्तर युग
6· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक और नाटककार

1· **भारतेंदु पूर्व युग** : -

इस कालखंड में नाट्य-चेतना का अभाव मिलता है। 13 वी शतीं से लेकर 19 वी शती तक मैथिली नाटक, रासलीला विषयक नाटक का पद्यबद्ध नाटकों की सृजना होती रही। लेकिन इनमें काव्य में अत्याधिक प्रधानता एवं तत्त्वों का अपेक्षाकृत अभाव था। हृदयराम, प्राणचंद चौहान, नेवान कवि, सोमनाथ, हरिराम, विश्वनाथ सिंह, गणेश कवि आदि ने काव्यत्मय नाटक लिखे। इनके नाटक हैं - 'रामायण', 'महानाटक', 'हनुमन्नाटक', 'प्रबोध चंद्रोदय', 'शकुंतला', 'माधव विनोद', 'आनंद-रघुनंदन', 'प्रद्युम्न-विजय' आदि। इनमें से कुछ नाटक अनूदित हैं। इनमें साहित्यिकता का अभाव है। डा·ओझा ने संस्कृत शैली के प्रथम हिन्दी नाटककार के रूप में रीवाँ नरेश विश्वनाथसिंह के "आनंद रघुनंदन" को हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक माना है। "बाबू गुलाबराय तथा डा· दशरथ ओझा भी "आनंद रघुनंदन नाटक में ही हिन्दी नाटको का प्रारंभ मानते हैं।"[9] यह नाटक नाटकीय वैशिष्टयों से पूर्ण हैं, किंतु अभिनेयता

का सर्वथा अभाव रहा। अतः इसे हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक नहीं कहा जा सकता।

कुछ विद्वानों में भारतेंदु के पिता बाबू गोपालचंद्र रचित "नहुष" नाटक को हिन्दी का प्रथम नाटक बताया है। इसकी रचना सं·1914 में हुई। परंतु तात्त्विक दृष्टि से यह ब्रजभाषा पद्य-बद्ध नाटकों की परम्परा में आता है। इसलिए यह नाटक आधुनिक कसोटीपर पूरा नहीं उतरता। भारतेंदु पूर्व काल में नाट्य-साहित्य की निर्मिती में जो शिथिलता पायी जाती है, उनमें अनेक कारण बताये जाते है, जिनमें साहित्यकारों की रुचि अधिकतर काव्य की ओर थी, गद्य साहित्य का अभाव, संतो की निराशजनक वाणी, मुस्लिम शासकों का शासन आदि आ जाते हैं। किंतु वास्तविकता तो यह थी कि इसके पूर्व जिस साहित्य की परिपाठी चलती रही, वह रीतिकालीन श्रृंगार पूर्ण साहित्य था। जनहित इस साहित्य का उद्देश्य न था। और यह परम्परा हिन्दी में -ह्रासोन्मुख संस्कृत नाटकों से मिली थी। जिसके फलस्वरूप जन-चेतना प्रायः लुप्त हो चुकी थी। नाटकों के स्वस्थ विकास के लिए राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना का अभाव था। इसलिए ऐसे नाटकों की सृजना न हो सकी, जिनका प्रभाव काल के प्रवाह में अखंड बना रहता।

मराठी के आद्य नाटककार विष्णुदास भावेजी का हिन्दी नाटक साहित्य के विकास में विशेष सहयोग दिया था। इन्होंने वाराणसी में हिन्दी में नाटक प्रस्तुत किये थे। इनके गीतों का पर्याप्त समावेश हैं। भारतेंदु से तीस वर्ष पहले हिन्दी में नाटक प्रस्तुत करने के कारण हिन्दी के आद्य नाटककार के रूप में भावेजी को माना जा सकता है।

2· **भारतेंदु युग : -**

हिन्दी साहित्य में नाटकों का वास्तविक आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से ही माना जाता है। भारतेंदु युग राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक नवजागरण का युग था। अँग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध 1957 के स्वातंत्र्य समर की घटना इसी काल में घटित हुई थी। इससे प्रेरणा ग्रहण करके भारतेंदु अपने गद्य साहित्य द्वारा मनुष्य मन के संस्कारित करने का प्रयास किया। डा· बच्चनसिंह के अनुसार - "आधुनिक गद्य साहित्य की

परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।"[10] नाटक ही ऐसा सशक्त माध्यम था, जिसका प्रभाव शीघ्र गति से जनहित पर हो सकता था। भारतेंदु तथा उनके मंडल के लेखक अपनी सम-सामायिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक गतिविधि के प्रति पूर्ण जागरूक थे। इनकी अभिव्यंजना के लिए नाटक से बढकर और कोई विधा प्रकार नहीं अपनाया जाता।

भारतेंदु ने संस्कृत साहित्य का आधार लेकर पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक नाटकों का सृजन किया। भारतेंदुजी हिन्दी के गद्य-साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं और वह हिन्दी खडी-बोली के भी प्रथम नाटककार हैं। नाटक विधा की व्यापक प्रभावोत्पादकता का उन्हें समुचित ज्ञान था। इसीलिए देश के नवजागरण के लिए उन्होंने नाट्य् रचना की ओर अधिक ध्यान दिया और सफलता भी प्राप्त की। इनके मौलिक नाटक हैं - "प्रेमजोगिनी", "चंद्रावती", "भारत की जननी", "भारत दुर्दशा", "नीलादेवी", और "सतीप्रताप"। इनकी रचनाएँ मुलतः राष्ट्रप्रेम की भावना से पूर्ण है। "प्रेमजोगिनी" में सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन हुआ है। "नीलदेवी" ऐतिहासिक नाटक है। "भारत-दुर्दशा" और "भारत जननी" में राष्ट्रप्रेम की भावना का चित्रण हुआ है। सामाजिक असंगतियों का चित्रण करनेवाले हास्य-व्यंग्य प्रधान प्रहसन "वैदिकी-हिंसा-हिंसा न भवति", 'विषस्य विषमोषधम्' और 'अंधेर नगरी' आदि नाटक भी इन्होंने लिखे। इनके "चंद्रावली" नाटक में प्रेमभक्ति का चित्रण हुआ है तो 'विषस्य विषमोषधम्' मे तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का चित्रण किया गया है। "अपने मौलिक नाटकों में उन्होंने सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होनेवाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है।"[11] इनकी रचनाओं के बारे में हम कह सकते हैं कि जिंदादिली इनके नाटकों की एक विशेषता है। इन्होंने सामाजिक, साहित्यिक राजनीतिक, पौराणिक, धार्मिक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे। इन सब में प्रेम तत्व या ईश्वर के प्रति है या राष्ट्र के प्रति। वे हिंदू-मुस्लिम संस्कृति के समन्वय के पोषक थे। इनके सभी नाटक अभिनेय हैं। इन्हें संस्कृत, प्राकृत, बँगला व अंग्रेजी के नाटक साहित्य का अच्छा ज्ञान था। इनके अनुदित नाटक हैं - "सत्य हरिश्चंद्र", "धनंजय-विजय", "मुद्राराक्षस", और "कर्पूर मंजरी"। सभी भाषाओं से अनुवाद किये थे। नाट्य् कला

के सिद्धांतो का अध्ययन उन्होंने किया था। उनके नाट्य् कृतियों में जीवन और कला, मनोरंजन और लोक-सेवा, सौंदर्य और शिव का संुदर समन्वय मिलता है। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण है। इस बारे में गुप्तजी लिखते हैं - "भारतेंदु ने संस्कृत नाटयशास्त्र की निर्धारित परंपरा में सबसे बडा परिवर्तन किया। नाटक के विषय को उन्होंने विस्तृत और अनेक रूपी बना दिया। पात्रों के चुनाव और चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी परिधि की ओर अधिक विस्तृत कर दिया।"[12] भाषा का उन्होंने परोपकार किया नवीन भावों की संजीवनी उसे दी, इसी कारण गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास होने में मदद हो गयी। भारतेंदु ने अपनी प्रतिभा के बल पर प्राचीन और नवीन भारतीय और पाश्चात्य कला तत्वों का समन्वय किया।

इस तरह भारतेंदु ही हिन्दी के सर्व प्रथम मौलिक नाटककार सिद्ध होते हैं। और अपने नाटकों के द्वारा उन्होंने बहुमुखी सृजन किया। देश शक्ति की सोई हुयी आग को जगाया, राष्ट्रप्रेम के जगाया, नई शिक्षा के स्वरूप को अपनाया। साहित्य और भाषा सभी की अनुपम ऐसी रचना की। सामाजिक और राष्ट्रीय स्वर, व्यंग्य विनोद एवं आदर्शवादिता इनके नाटकों की विशेषतायें हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि भारतेंदु एक बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार थे। उन्होंने साहित्य के अनेक विधाओं में काम किया है। प्रधानता वे कवि थे। इस प्रकार इस युग में भारतेंदु ने हिन्दी नाटकों को खडी बोली में लिखने का प्रयास किया। अतः इस युग में उनका स्थान महत्त्वपूर्ण है।

भारतेन्दुयुगीन नाटककार : -

भारतेन्दु ने अनेक साहित्यकारों को प्रेरित कर नाट्य साहित्य के उपलब्धि को बढाया है। इस काल में प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास, श्रीनिवादास, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण "प्रेमघन", राधाचरण गोस्वामी, देवकीनंदन त्रिपाठी, शालिग्राम, आम्बिकादत्त व्यास, तोताराम, शिवनंदन सहाय आदि नाटककारों ने नाट्य् साहित्य के विकास में विशेष योगदान दिया है।

श्री प्रतापनारायण मिश्र ने "कवि-कौतुक" और "गोसंकट" आदि सामाजिक नाटक लिखे।

राधाकृष्णदास ने "महाराणा प्रताप", "महारानी पद्मावती", "दु:खिनी बाला" आदि नाटकों का सृजन किया। इन नाटकों में महाराणा के साहस, शौर्य एवं, त्याग सभी धर्मो की एकता का प्रतिपादन सतीत्त्व के गौरव की व्यंजना और अनमेल विवाह के पद्धतियों की अभिव्यक्ति मिलती है।

श्रीनिवासदास कृत ""प्रल्हाद चरित", "तप्त संवरण", "रणधीर प्रेम मोहिनी" और "संयोगिता स्वयंवर" आदि नाटक लिखे गये। प्रथम नाटक को इनके अन्य तीन नाटक उच्चकोटी के हैं। "रणधीर-मोहिनी" हिन्दी का पहला दु:खान्त नाटक है।

बालकृष्ण भट्ट ने एक दर्जन मौलिक एक अनूदित नाटक प्रस्तुत किये। "दमयंती स्वयंवर", "बृहन्नला", "वेणुसंहार", "कालिराज की सभा", "रेल का विकट खेल", "बालविवाह", "जैसा काम वैसा परिणाम", आदि ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटक लिखे। इन्होंने प्रहसन नाटक भी लिखे हैं।

बदरीनारायण "प्रेमधन" कृत "भारत-सौभाग्य", "प्रयाग-रामागमन", "वारांगण रहस्य", "वृद्ध विलास", आदि नाटक राष्ट्र-सुधार की भावनाओं से अनुप्रवित हैं।

राधाचरण गोस्वामी ने "सती चंद्रावली", "अमर राठोर", "भंग तरंग" और "बुढे मुँह मुँहा से" आदि सामाजिक एवं धार्मिक नाटक लिखे।

देवकीनन्दन त्रिपाठी ने "सीता-हरण", "रूक्मिणी हरण", "कंसवध", आदि पौराणिक नाटक लिखे। इनके प्रहसन नाटक है - "रक्षा-बंधन", "एक-एक-के-तीन-तीन", स्त्री-चरित्र", "वेश्या-विलास", "बैल छटके का" आदि।

शालिग्राम ने "अभिमन्यु वध", "पुरू-विक्रम", "मोरध्वज", "लावण्यवती" तो सुदर्शन ने "माधवानल और कामकंदला" आदि पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटक लिखें।

अंबिकादत्त व्यास कृत "भारत सौभाग्य", तोताराम का "विवाह विडंबन" तथा बलदेव प्रसाद मिश्र का "मीराबाँई" आदि रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

किशोरीलाल गोस्वामीकृत "चौपट चपेट", गोपालराम गहमरी कृत "जैसे का तैसा", नवनसिंह का "वेश्या" नाटक बलदेव मिश्र का "लल्ला बाबू" आदि प्रहसन नाटक हैं।

इस युग में संस्कृत, बँगला तथा अँग्रेजी नाटकों का अनुवाद हुआ। संस्कृत के कालिदास, भवभूति, शुद्रक, हर्ष आदि के साहित्य का अनुवाद लाला सीताराम, देवदत्त तिवारी, नंदलाल, ज्वालाप्रसाद मिश्र ने किया। बापू रामकृष्ण वर्मा ने "पद्मावती", उदित नारायण लाल ने "कृष्ण कुमारी" और ब्रजनाथ ने "वीर-नारी" आदि बँगला नाटकों का अनुवाद किया। अँग्रेजी शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद तोताराम, रत्नचंद्र मथुरादास ने किया।

इनके नाटकों की भाषा सरल तथा पात्रों के अनुसार रही। इनमें उपदेश की मात्रा अधिक है। इनका विषय जीन जीवन और सामाजिक समस्याओं का चित्रण करता रहा है। खडी बोली हिन्दी गद्य का प्रचार करने हेतु इस युग में अनेक नाटकों की रचना की गयी। बाबू गुलाबराय लिखते हैं - "इस काल में नाटक का मनुष्य जीवन से निकट संबंध स्थापित हो चुका था। इसकी विशेषता है - पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग।"[13]

इस प्रकार इसयुग ने जनसाधारण से लेकर विद्वानों तक पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया तथा अपने युग को प्रभावित, जागृत एवं अनुरंजित करने की दृष्टि से उसका महत्त्व अधिक रहा है।

हिन्दी में नाटक के तत्वों में अपेक्षित परिवर्तन के लिए दिशा-निर्देशन करने के उद्देश्य से भारतेन्दु ने अनुवाद किये। इसप्रकार भारतेन्दुजी ने हिन्दी नाटक-साहित्य को एक मौलिक दृष्टिकोण दिया। जातीय-जीवन को यथार्थता का बोध जन-जीवन को कराने के लिए नाटक को सशक्त माध्यम के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया।

द्विवेदी युग :-

भारतेन्दु के बाद एवं प्रसाद युग के आरंभ के बीच जो कालखंड आता है उसे द्विवेदी युग या संक्रांत काल कहा जाता है। भारतेन्दु युग के नाटक में नव-जीवन की जिस निकटता का परिचय मिलता है वह इस युग के नाटकों में नहीं मिलता। ऐतिहासिक नाटकों की ही रचना अधिक हुई। इस बारे में डा॰शिवकुमार शर्मा लिखते हैं - "भारतेन्दु काल के उपरान्त प्रसाद-युग के आरंभ के बीच के काल में नाटक संख्या में तो कभी भी नहीं लिखे गये, किन्तु इन काल में प्रायः प्रतिभाशाली नाटककारों का अभाव ही रहा है।"[14]

महावीर प्रसार द्विवेदी का युग नाटकों की दृष्टि से यह अनुवादों का युग रहा है। इस काल में शेक्सपीयर, द्विजेंद्रलाल राय और रवींद्रनाथ ठाकुर आदि की रचनाओं का अनुवाद हुआ।

संस्कृत से अनुवादित अनेक रचनाएँ हैं। रायबहादुर लाला सिताराम ने "नागानन्द", "मृच्छकटिक", "उत्तर राम चरित्र", "मालती-माधव", आदि के गद्य और पद्य में अनुवाद किये। ज्वाला प्रसाद ने "वेणी संहार" और "अभिज्ञान शाकुंतल" बालमुकुन्द गुप्त ने "रत्नावली" सत्यनारायण कवि रत्न ने "उत्तर रामचरित" और "मालती-माधव" के अनुवाद किर्ये।

बँगला से अनुवादित करने में बापू गोपलराम गहमरी और बाबू रामकृष्ण वर्मा का नाम आता है। गहमरी ने "बनबीर", "चित्रांगंधा", "देशदशा" और "विद्या-विनोद" नाटक का अनुवाद किया। वर्माजी ने "बीरनारी", "कृष्णकुमारी" और पद्मावती नाम नाटकों के अनुवाद किर्ये।

इस युग में अनुदित नाटकों की प्रधानता रही। मौलिक नाटक कम ही लिखे गये। इस युग के पौराणिक नाटक हैं - "नल-दमयंति", "अभिमन्यु-वध", "रामलीला", "तुलसीदास" आदि। सामाजिक और राष्ट्रीयता प्रधान नाटक में "वृद्ध-विवाह", "भूषण-दूषण", "उन्नति कहाँ से होगी", आदि नाटकों का समावेश

होता है। इसके साथ ही रंगमंचीय नाटकों की भी सृजना होती रही, जिसमें "वीर अभिमन्यु", "सीता वनवास", "श्रीकृष्णावतार", "द्रौपदी-स्वयंवर", "शकुंतला", "रामायण", "महाभारत", "ईश्वर-भक्ति" आदि नाटक लिखे गये। ऐतिहासिक नाटकों में प्रेमचन्द का "कर्बला", मिश्र बंधुओं का "शिवाजी" तथा जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का "तुलसीदास" आदि नाटकों समावेश होता है। बद्रीनाथ भट्ट के "मिस अमेरिका", "विवाह-विज्ञापन" ये प्रहसन नाटक हैं।

"इस काल के नाटककारों ने बाल-विवाह, स्त्री-शिक्षा, वृद्ध-विवाह, मुकदमेबाजी, रीतिकालीन अश्लीलता तथा पाश्चात्य सभ्यता की कृत्रिमता तथा अंधानुकरण आदि विभिन्न विषयों पर लेखनी उठाई और इस प्रकार तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक चेतना के प्रति जागरूक होने का प्रमाण दिया है। द्विवेदी युगीन प्रबुद्धजनों में नाटक-लेखन की अपेक्षा अभिनय की ओर अधिक जागरूकता लक्षित होती है।"[15]

इस युग के नाटकों की शैली अथवा शिल्प में कोई परिवर्तन नहीं हुये। किंतु नाटककारों ने इस दृष्टि से प्रयास अवश्य किया है। द्विवेदीजी तथा इस काल के अन्य लेखकों ने वस्तु-शैली और भाषा सभी क्षेत्रों में सुधार एवं संस्कार लाने के लिए सक्रिय योग दिया।

प्रसाद युग -

भारतेन्दु युग से लेकर हिन्दी नाटक का विकास प्रसाद युग में आकर अपनी चरम-सीमा को प्राप्त हुआ। इस युग को जयशंकर प्रसाद ही ऐसे प्रथम नाटककार हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है। भारतीय अतीत का गौरव उनके नाटकों का प्राण है। डा॰जयनाथ नलिन लिखते हैं - "प्रसाद युग हिन्दी के इतिहास में उत्थान का स्वर्ण-युग हैं। इसी युग में प्रसाद ने भारती के मंदिर में नाटकों की दिव्य भेंट चढ़ाई। नाटकों को स्वस्थ, साहित्यिक, कलापूर्ण, स्वाभाविक, मौलिक और स्वाभाविक रूप देने का सर्वप्रथम श्रेय प्रसाद की प्रतिभा को है। प्रसाद युग में हिन्दी नाटक कला, शैली, टेकनीक आदि की दृष्टि से पूर्ण विकास को पहुँचा।"[16] प्रसादजी ने अपने नाटकों में पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व

प्रदान कर उनके अंतर्द्वंद्व का कलात्मकपूर्ण चित्रण किया। भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य् कला का सुन्दर सामंजस्य प्रसाद ने किया है। उनके नाटक न सुखान्त है, न दुःखान्त, बल्कि प्रसादान्त है। उनके नाटकों का अंत ऐसी वैराग्यपूर्ण भावना से होता है कि जिसमें नायक की विजय तो हो जाती है, किंतु वह स्वयं उपभोक्ता न बनकर प्रतिनायक को ही लौटा देता है।

जयशंकर प्रसाद ने सन 1910 ई॰से लेकर सन 1933 तक नाट्य्रचना की। इनके ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक हैं - "सज्जन", "कल्याणी", "परिणय", "करूणालय", "प्रायश्चित्त", "राज्यश्री", "विशाख", "अजातशत्रु", "जनमेजय का नागयज्ञ", "स्कन्दगुप्त", "एक घूँट", "चंद्रगुप्त" और "ध्रुवस्वामिनी" आदि इनके नाटकों की विशेषतायें हैं। ऐतिहासिक गवेषणा, भारतीय संस्कृति का सजीव चित्रण, नाटकीय विधान में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य्-कला का सुंदर सामंजस्य, भावुकता पूर्ण संवाद और कवित्वमय वातावरण, कला और शिल्प की दृष्टि से भी अनेक नाटक आकृष्ट हैं। प्रसादजी ने जनवासियों में आत्मगौरव, स्वाभिमान, उत्साह एंव प्रेरणा का संचार कने की दृष्टि से भी उनके नाटक उत्कृष्ट हैं। प्रसादजी ने जनवासियों में आत्मगौरव, स्वाभिमान, उत्साह एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए गौरवपूर्ण दृश्यों का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है, जिसमें प्राचीन इतिहास तथा संस्कृति का अंकन हुआ है। इस बारे में डा॰राजनाथ शर्मा लिखते हैं - "प्रसाद के नाटकों में उनके संस्कृति पुनरूत्थान की भावना, दार्शनिक चिंतन, स्वाभाविक चित्रण, कल्पना, राष्ट्रीयता के प्रति आग्रह, संघर्ष के विषय से जीवन अतृप्त की खोज का प्रयत्न आदि ऐसी बातें हैं, जो उन्हें हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ नाटककार घोषित करती है। और उनके नाटकों को साहित्य की स्थायी निधि बता देती है।"[17] उनके नाटकों में ऐतिहासिकता की प्रधानता है, जिसमें भारतीय संस्कृति की अमर गाथा है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय संस्कृति के प्रभावोत्पादक चित्र हैं, वर्तमान का जीवंत, तथा भविष्य की आशामय प्रेरणा है। साथ-साथ उनमें देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता की गहरी छाप है।

मानव-चरित्र के सत् और असत् दोनों पक्षों को पूर्ण प्रतिनिधित्व उन्होंने प्रदान किया है। नारी रूप को जैसी महानता, सूक्ष्मता, शालीनता एवं गंभीरता कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई है उससे भी अधिक सक्रिय एंव तेजस्वी रूप नाटककार प्रसादजी ने दिया है। रंगमंच तथा अभिनय की दृष्टि से इनके नाटकों में दोष मिलते हैं। लंबे स्वगत कथन तथा वार्तालाप दर्शन-शास्त्र की कठिण उक्तियाँ, गीतों का अत्यधिक, पात्र वातावरण की गंभीरता एवं संस्कृत गर्भित भाषा आदि बातें अभिनेयता में बाधक होती हैं। प्रसादजी अपने नाटकों में कवि और दार्शनिक अधिक हैं परंतु नाटककार कम हैं। इस तरह इस युग के स्रष्टा जयशंकर प्रसादजी रहे हैं। सत्य तो यह है कि नाटक को साहित्यिक, कलापूर्ण, स्वाभाविक, मौलिक और स्वाधीन रूप देने का सर्वप्रथम श्रेय प्रसादजी को ही है।

इस तरह प्रसादजी में एक उत्कृष्ठ कलाकार की भाँति त्याग और ग्रहण की पूर्ण परख है। इसीलिए वे युगद्रष्टा तथा युगनिर्माता के रूप में माने जाते हैं।

प्रसादयुगीन नाटककार

प्रसाद युगीन नाटककारों ने पौराणिक, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा काल्पनिक की सृजना की। इनके नाटकों में नारी के स्वच्छंदता का अंकन हुआ है। इस युग के नाटकों में देशानुराग, स्वदेश भक्ति, हिन्दु-मुस्लिम एकता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा जन-शक्ति के विकास पर जोर दिया गया।

इस काल के पौराणिक नाटक हैं - "रामाभिषेक" (गंगाप्रसाद), "रामलीला" (ब्रजचंद), "रामवन यात्रा" (गिरिधर लाल), "रामलीला नाटक" (नारायण सहाय), "नल-दमयंती" (महावीर सिंह), "अभिमन्यु-वध" (गौरचरण गोस्वामी), "उर्वशी" (लक्ष्मीप्रसाद), "सुदाम" (शिवनंदन सहाय), "उद्धव" (ब्रजनंदन सहाय), "कामिनी-कुसुम" (हरिनारायण) आदि। इन नाटकों का कलात्मक विकास नहीं हुआ किंतु जन-साधारण में उनका प्रचार अधिक रहा।

इतिहास - पुराण के आधार पर काल्पनिक नाटक लिखे गये। "दुमदार आदमी", "गडबडवाला", "कुरसी मैन", "न घर का न घाट का" नाटक श्रीवास्तव ने लिखे। ब्रदीनाथ भट्ट ने "अमेरिकन", "विवाह-विज्ञापन", "चुंगी की उम्मीदवारी" और बेचन शर्मा ने "उजबक", "चार बेचारे", तथा सुदर्शन ने "ऑनरेरी मजिस्ट्रेट" आदि काल्पनिक नाटकों की सृजना की।

मिश्र बंधु कृत "ने-नोन्मीलन", प्रेमचंद ने संग्राम लक्ष्मणसिंह ने "गुलामी की नशा", जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने "मधुर-मिलन" आदि सामाजिक नाटक लिखे। "वरमाला", "राजमुकुट" (गोविन्द वल्लभ पंत), "महात्मा ईसा", "गंगा का बेटा", "चुम्बन" (बेचन शर्मा उग्र), "प्रताप-प्रतिज्ञा", "समर्पण", (जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद), "निशीथ", "भग्नावशेष" (रामेश्वरप्रसाद कुमार हृदय), "दयानंद" (सुदर्शन) आदि ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक लिखे गये। इन नाटकों में पात्रों का मानसिक संघर्ष, राष्ट्रीयता की भावना, वैवाहिक समस्या, यथार्थवाद का चित्रण, भारत के गौरव तथा ऐश्वर्य, हिन्दु-मुस्लिम एकता आदि की अभिव्यक्ति की गयी है। गांधीवादी विचारधारा का इन पर प्रभाव रहा है। इस बारे में डा॰श्रीपती शर्माजी लिखते हैं - "इन नाटककारों में प्रसाद एक प्रकाश-पुंज के समान थे, जिनकी प्रतिभा के दिव्य आलोक से हिन्दी काव्य और नाटक साहित्य का प्रांगण जगमगा उठा।"[18]

इस काल में भी संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, नाटकों का अनुवाद सत्यानारायण कवि, नारायण पांडेय, रामचंद्र वर्मा, और प्रेमचन्द ने किया। ऐतिहासिक नाटकों की रचना भी की गई। हरिकृष्ण प्रेमी कृत "रक्षाबन्धन्", "शिवा-साधना", "शपथ", उदय शंकर भट्ट के "सिंध पतन", "विक्रमादित्य", आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे। इन नाटकों की विशेषता यह है, कि इसमें तत्कालीन यथार्थ चित्रण के साथ आदर्शवाद भी जुड़ा दिखाई देता है। इस काल में प्रहसन की अपेक्षा गंभीर, चिंतनपरक नाट्यकृतियों का सृजन होता रहा। रंगमंचीय प्रयोगों में विविधता एवं विषयों में विविधता लाकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने का कार्य इस काल में भी चलता रहा।

डॉ॰भगवतीप्रसाद शुक्ल लिखते हैं - "प्रसाद युग के सभी नाटक किसी-न-किसी महत् उद्देश के लिए रचे गये हैं। प्रतिभा, बुद्धि और भावना के सुबक सामंजस्य से रचे हुए ये नाटक इतिहास, धर्म, दर्शन, संस्कृति, विज्ञान, कला, राजनीति, समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, मनोविज्ञान आदि के पुनीत संगम हैं। इस युग में सारी परम्पराओं को चुनौती दी गयी। जीवन के विराट चित्र प्रस्तुत किये गये। इतिहास की विराट पीठिका पर मनुष्य की शाश्वत वृत्तियों और आधुनिक जीवन की कटुताओं के बडे भावात्मक चित्र इन नाटकों में हैं। अतः प्रसाद युग-हिन्दी-नाट्य-कला का सर्वोच्च शिखर है।"[19]

प्रसादोत्तर युग

प्रसाद के कालखंड में जिन नाट्य-रूपों में विविधता आ गयी थी, उनका संपूर्ण विकास इस कालखंड में हुआ। इस युग में भी नाटक की दिशा सभी ओर से समृद्ध हुई। बहुमुखी प्रतिभा का उदय तथा विकास इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है। साहित्यिक क्षेत्र विस्तृत-सा होता गया। ज॰रामकुमार गुप्तजी ने लिखा है - "प्रसादोत्तर-काल हिन्दी नाटकों की समृद्धि का युग है और विषय तथा शैली-शिल्प सभी क्षेत्रों में हिन्दी नाटक क्रमशः विकास की ओर अग्रसर है।"[20]

इस समय के नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, पं॰उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, उपेंद्रनाथ अश्क , वृंदावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, सद्गुरू शरण अवस्थी, राम नरेश त्रिपाठी, रामवृक्ष बेनीपुरी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, गोविन्द वल्लभ पंत, डा॰लक्ष्मण स्वरूप, जगदीशचंद्र माथुर, चतुरसेन शास्त्री, लक्ष्मीनारायण मिश्र, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सेठ गोविन्ददास ने सर्वाधिक नाटक लिखे। "हर्ष", "कर्ण", "कुलीनता", "विकास", "महत्त्व किसे", "दुःख क्यों?", और "कर्तव्य" आदि नाटकों में इन्होंने यथार्थ की अपेक्षा आदर्श को अपनाया है। किंतु मानवीय भावनाओं के सजीव चित्रण और स्वाभाविक शैली-शिल्प की दृष्टि से उनकी रचनाएँ सुन्दर बन पड़ी है। इसके अलावा "सेवापथ", "सिद्धान्त", "पाकिस्तान", "संतोष कहाँ", "गरीबी और अमीरी",

"बड़ा पापी कौन" आदि सामाजिक, पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक लिखे। सेठजी ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। ऊँच-नीच का भेद-भाव, जातिभेद, भ्रष्टाचार, दुराचार, पाखंड, राजनीतिक नेताओं की अवसरवादिता, सेवा के नाम पर स्वार्थपालन आदि दूषित प्रवृत्तियों के पोषण का प्रयास किया है।

पं॰उदयशंकर भट्टजी की ऐतिहासिक नाटकों की देन हैं। "विक्रमादित्य", "दाहर", "मुक्तिपथ" और "शंक-विजय", ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दृष्टि से इनकी सुन्दर कलापूर्ण रचनाएँ हैं। "अम्बा", "सगर-विजय", "विश्वामित्र" और "मत्स्यगंधा" आदि नाटकों में धार्मिक कट्टरता और सांप्रदायिक जूनुन का रूप प्रस्तुत किया है। इनके बारे में शांति स्वरूपजी लिखते हैं - "आपने नाटकों में समाज के उस खोखलेपन, पाखंड, आडम्बर और दुराभिमान का चित्र खींचा है, जिसके कारण भारतीय राष्ट्र सामाजिक रूप में जर्जर बन रहा है।"[21] काव्यमय भावुकता पूर्ण भाषा, स्वगत कथन का समावेश इनके नाटकों में हुआ है।

समस्या नाटक के प्रवर्तक लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "संन्यासी", "मुक्ति का रहस्य", "राक्षस का मंदिर", "सिंदूर की होली", "राजयोग", "आधी रात" आदि सामाजिक समस्याप्रधान नाटक लिखे। हरिकृष्ण प्रेमी ने "पाताल-विजय", "रक्षा-बंधन", "प्रतिशोध", "आहुति", "स्वप्न भंग", "छाया", "बंधन", "मंदिर", "विषयपान", "उद्धार", "शिवा-साधना", "शपथ", "प्रकाश-स्तंभ", "कीर्ति-स्तंभ", "आन का मान" आदि मौलिक ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों की सृष्टि की। ऐतिहासिक नाटकों में आधुनिक समस्या का चित्रण, राष्ट्रीयता का स्वर एवं पात्रों का सजीव चित्रण किया है। जिनमें मध्यकालीन इतिहास का रूप सामने आता है। सामाजिक नाटकों में समाज और व्यक्ति की समस्याओं का यथार्थ वर्णन मिलता है। इस प्रकार उन्होंने अपने नाटकों में साहित्य, कला, अभिनय का अपूर्व सामंजस्य कर दिखाया।

वृंदावनलाल वर्मा ने "झाँसी की रानी", "पूर्व की ओर", "वीरमल", "ललित विक्रम", "राखी की लाज", "बाँस की फाँस", "खिलौने की खोज", "केवट",

"नीलकंठ", "सगुण विस्तार", "देखा-देखी" आदि ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटकों की रचना की। इन्होंने अपने साहित्य में देश प्रेम, जातिप्रेम, मानव-प्रेम, कला-प्रेम तथा संस्कृति प्रेम की अभिव्यक्ति भावनाओं और कल्पनाओं से की है। इनकी कृतियों में उपयुक्त भाषा एवं गतिशील संवाद संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त है।

गोविन्द वल्लभ पंत ने "अंगूर की बेटी", "सिंदूर की बिंदी", "राजमुकुट", "शशि-गुप्त", "ययाति" आदि नाटक लिखे। इसमें मदिरा-पात्र एवं नारी समस्या का चित्रण मिलता है।

इसके साथ ही सांस्कृतिक एवं पौराणिक नाटकों की रचना भी की गयी इसमें लक्ष्मीनारायण मिश्र के "नारद-की-वीणा", "गरूड-ध्वज", "वत्सराज", "वितस्ता की लहरें", चतुरसेन शास्त्री का "राधा-कृष्ण", पृथ्वीनाथ शर्मा का "उर्मिला", सदगुरू शरण अवस्थी का "मंझली रानी", रामवृक्ष बेनीपुरी कृत "सीता की माँ", गोकुलचन्द वर्मा का "अभिनय रामायण", वीरेन्द्रकुमार गुप्त का "सुभद्रा-परिणय", डा·लक्ष्मण स्वरूप का "नल-दमयंती", रांघेय राघव कृत - "स्वर्ग भूमि का यात्री" आदि नाटकों का समावेश होता है। इन कृतियों के बारे में हम कह सकते हैं कि - इन कृतियों का कथानक पौराणिक होते हुए भी आज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इसके अलावा जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद ने "समर्पण", जयनाथ नलिन ने "अवसान", शंभुनाथ सिंह ने "धरती और आकाश", रामनरेश त्रिपाठी ने "पैसा परमेश्वर" आदि नाटकों की रचना की। इसमें युग, समाज और राष्ट्र की विभिन्न परिस्थितियों, प्रवृत्तियों एवं समस्याओं का अंकन हुआ है।

इस तरह यह काल नाटक साहित्य की दृष्टि से समृद्ध रहा है। रमेशचन्द्र शर्मा लिखते हैं - "प्रसादोत्तर नाटक साहित्य में ऐतिहासिक, पौराणिक, समस्या-प्रधान आदि नाटकों की परंपरा का विकास मिलता है। नवीनता की दृष्टि से समस्या नाटकों का इस काल में अविर्भाव उल्लेखनीय है।"[22]

इस प्रकार प्रसादोत्तर नाटककारों ने अपने इस कला में ऐतिहासिक, पौराणिक, समस्या प्रधान नाटकों का निर्माण किया तथा नाटक साहित्य को नव-दृष्टि प्रदान की। "प्रसादोत्तर नाटककार का संघर्ष समाज, संस्कृति, सभ्यता की जड़ को खोकला कर रही विद्रूपताओं के परिहार तथा व्यक्ति-मन के कुंठाओं के विश्लेषण का है। समाज का साधारण व्यक्ति या मध्य-निम्न वर्ग ही युगों के घात-प्रतिघातों से उद्वलित होता है, अतः प्रसादोत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य मुख्य रूप से इसी वर्ग के संघर्ष का नाटकीय आयोजन है।"[23] इस तरह इस काल का नाट्य-साहित्य विभिन्नताओं और प्रयोगों का प्रतीक है। व्यक्ति और समाज की विषमता का समन्वय करने का प्रयास इस युग के नाटककारों ने किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक और नाटककार

स्वातंत्र्योत्तर काल में नाटक के जिन विविध रूपों का निर्माण हुआ था, इस युग में वे पूर्ण रूप से विकसित हुए। पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव इस काल में अधिक रहा है। नाटक के अभिनय और मंचीयता तथा तत्वों की ओर अधिक ध्यान देने से नव-नवीन प्रायोगिक कृतियों का निर्माण हो सका। स्वातंत्र्योत्तर काल सभी दृष्टियों में नवीन उन्मेश का युग है। ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक नाटकों के साथ जीवनी-परक, समस्यामूलक, गीतिनाट्य, ध्वनि नाटक, सिने नाटक, एवं प्रतीक नाटक आदि सभी प्रकार के नाटक लिखे गये। नृत्य, गीत, नेपथ्य, रंग-सूचनाएँ आदि में भी नवीनता आ गयी। नाटक को वाचनीय की अपेक्षा दर्शनीय बनाने का सफल प्रयास इस युग में हुआ।

इस काल के नाटकों मे पारिवारिक, आर्थिक, जातिगत समस्याओं के चित्रण के साथ मानव मन की अनेक गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास मनोवैज्ञानिक रहा है। बदलते सामाजिक, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना और पुराणे मूल्यों का बहिष्कार भी इन कृतियों में हुआ है। आधुनिकता में आँचलिकता का चित्रण किया गया है।

आधुनिक नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, वृन्दावनलाल वर्मा, पृथ्वीनाथ शर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, डॉ॰लक्ष्मीनारायण लाल, भगवतीचरण वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, मोहनलाल

महती वियोगी, रामवृक्ष बेनीपुरी, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, सुधींद्र और वीरदेव वीर आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

"सेठ गोविन्ददास का "पतित सुमन" सेक्स संबंधी मानसिक रोग को प्रकट करनेवाला नाटक है। नर और नारी के यौन-संबंधों को इसमें जन्मजात माना है। लेखक का कहना है कि "समाज तथा धर्म ने भाई, बहन, माँ, बाप, धर्म, अधर्म, पुण्य और पाप के कृत्रिम सबंधों को बनाकर स्त्री-पुरूष के स्वाभाविक यौन सम्बन्धों पर संयम, नैतिकता का बन्धन लगा दिया है। परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के मानसिक रोगों तथा ग्रंथियों का विकास हो गया है।"[24]

पं·उदय शंकर भट्ट ने "नया समाज" का मनोविश्लेषणात्मक नाटक लिखा। इसमें नारी की काम-पिपासा का चित्रण मनोविज्ञान के आधार पर किया है।

पृथ्वीनाथ शर्मा ने "दुविधा" और "अपराधी" सामाजिक नाटक लिखे। "साध" उनका आधुनिक नाटक है। इसमें संतान-विरोध तथा पुत्रेषण की प्रवृत्ति का दमन अनेक मानसिक रोगों तथा ग्रंथियों के विकास का कारण बताया है।

वृंदावनलाल वर्मा का "धीरे-धीरे" एक राजनैतिक नाटक है। राजनीतिक नेता चुनाव जीतने के लिए किस प्रकार सत्-असत् नियमों से जनता को प्रभावित करते हैं और जनता को पथभ्रष्ट करते हैं, उसका चित्रण किया है।

उपेंद्रनाथ अश्क विशुद्व यथार्थवादी नाटककार हैं। "स्वर्ग की झलक", "कैद", "उड़ान", "छठा बेटा", "अलग-अलग रास्ते", "अंजोदीदी" आदि इनके सामाजिक समस्या-प्रधान नाटक हैं। डा·गणपतिचन्द्र के शब्दों में - "इन्होंने अपने नाटकों में नारी-शिक्षा, नारी-स्वातंत्र्य, विवाह-समस्या, संयुक्त परिवार आदि से संबंधित विभिन्न पक्षों पर सामाजिक दृष्टि से तीखे व्यंग्य किये हैं। अनेक नाटकों में उन्होंने आधुनिक समाज की स्वार्थ-परता, धन-लोलुपता, कामुकता, अनैतिकता आदि का भी चित्रण यथार्थवादी शैली में किया है।"[25] अश्कजी ने अपने प्रायः प्रत्येक नाटकों में वैवाहिक जीवन की असफलता को कथानक बनाया है। हास्य और व्यंग्य की प्रधानता

इनके नाटकों में मिलती है। उपेंद्रनाथ अश्क समाज और व्यक्ति की उलझन भरी आंतरिक समस्याओं के चित्रण की दृष्टि से सर्वाधिक सफल नाटककार है। मानव के अंतरमन में दबी नाना भावनाओं के चित्रण में उनका नाटककार क्रियाशील रहा है।

मोहन राकेश के "आषाढ का एक दिन", "लहरों के राजहंस", और "आधे-अधूरे" ख्यातिप्राप्त आधुनिक नाटक हैं। "आषाढ़ का एक दिन" में कालिदास का ही द्वंद्व है। भावना के धरातल में यथार्थ की जीत दिखाई है। "लहरों के राजहंस" में नंद के माध्यम से वर्तमान युगीन मानव की अनिश्चयात्मक प्रवृत्ति का अंकन किया है। इसमें भोग और मुक्ति के द्वंद्व का चित्रण किया है। 'आधे-अधूरे' में व्यक्ति को संघर्ष किस तरह मध्यवर्गीय टूटते परिवारों की द्वंद्वात्मक चेतना को जगाता है यही चित्रित किया है। इसमें एक व्यक्ति का संघर्ष नहीं समूह का है।

जगदीशचंद्र माथुर की नाटकीय प्रतिभा, टेकनीक तथा रंगमंचीयता आधुनिक साहित्य में महत्त्व रखते हैं। "कोणार्क", "कुँवरसिंह", "शारदिया", "बन्दी" आदि उनके लोकप्रिय नाटक हैं। वर्तमान समाज की जटिल समस्याओं, उसके संघर्षों तथा विवशताओं का उन्होंने कलात्मक चित्र अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है। इनके नाटक की भाषा प्रभावशाली, परिमार्जित तथा व्यंग्यपूर्ण भाषाशैली में अभिव्यक्त है। "कोणार्क" युवा-पीढ़ी में अतीत के सारे अत्याचारों के प्रति क्रोध को लेकर प्रस्तुत होता है। इसमें दो पीढ़ियों का संघर्ष दिखाया है। इसमें बताया है कि राजनीतिक, आर्थिक संघर्ष यदि युग- संवेदना का प्रतिफलन है तो संस्कृति की प्रस्थापना नाटककार का निरंतर संघर्ष। "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक को जिन प्रतिमाओं ने सर्वथा नवीन मोड़ दिया है और हिन्दी रंगमंच के नव निर्माण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, उनमें श्री जगदीशचन्द्र माथुर और स्व॰मोहन राकेश के नाम उल्लेखनीय हैं।"[26]

लक्ष्मीनारायण लाल यथार्थवादी नाटककार हैं। "अंधा कुँआ" एक अत्यंत कलापूर्ण दुःखान्त समस्या नाटक है। इसमें भारतीय गाँवों की अनपढ़ नारी की मूक कन्या का चित्र सुन्दर शैली में अभिव्यक्त हुआ है। ग्रामीण समाज, नारी की करूण कथा का इसमें मानवीय चित्र उभरता है। "अंधा कुँआ" एक भारतीय वैवाहिक प्रथा

का प्रतीक है, जिससे मुक्त होने का भारतीय नारी के पास कोई साधन नहीं है। इस तरह इसमें वैवाहिक जीवन पर व्यंग्य किया गया है।

भगवतीचरण वर्मा का "रुपया तुम्हें खा गया" एक समस्या-मूलक नाटक है। आज की भौतिक और पूँजीवादी संस्कृति जिन मान्यताओं पर स्थापित हो, वे निराधार और असहाय है, यही इस नाटक में स्पष्ट किया है। मनुष्य को अंत में रुपया किस तरह खा जाता है यही सांकेतिक शैली में बताया है। नाटककार आज के आर्थिक और पूँजीवादी संस्कृति के खोखलेपन को ही इसमें दिखलाना चाहता है।

मोहनलाल महती वियोगी ने "अफ़जल वध", "डंडी यात्रा", "कसाई" और "वे दिन" नाटकों की रचना की। इन नाटकों में शिवाजी की वीरता, हिन्दु-संस्कृति के प्रति उनके अगाध प्रेम, राजनीतिक घटना, समाज की विकृत परिस्थितियाँ, आदि का यथार्थ अंकन हुआ है।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने "तथागत", "शकुन्तला", "अम्ब्रपाली", "अमरज्योति", "खून की याद", "गाँव की देवता", "विजेता", "नया समाज" आदि ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे। इनके नाटकों पर गांधीवाद तथा रूसी विचारधारा का प्रभाव है। प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं पर व्यंग्य का चित्रण इनमें हुआ है।

रामनरेश त्रिपाठी ने "प्रेम लोक", "वफ़ानी चाचा", "अंजन बी" और "पैसा परमेश्वर" नाटक पाश्चात्य शैली अपनाकर लिखे हैं। इन नाटकों में पूँजीवादी सभ्यता एवं हिन्दु-मुस्लिम एकता का चित्रण किया गया है।

श्री विनोदी रस्तोगी का "आजादी के बाद" और नरेश मेहता का "सुबह के घंटे" राजनीतिक समस्या नाटक हैं। इसमें जन-जीवन की अराजकता एवं भारतीय राजनीतिक घटना का वर्णन किया है।

इस तरह स्वातंत्र्योत्तर काल में ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटकों की अपेक्षा सामाजिक समस्या नाटकों की प्रधानता रही है। पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव के कारण समस्या नाटक अधिक लिखे गये। इस कारण हिंदी नाट्य्-साहित्य को एक नयी दृष्टि प्राप्त

हुई। समस्या नाटकों मे भी सेक्स, नारी, विवाह के अतिरिक्त अन्य सामाजिक तथा राष्ट्र निर्माण संबंधी समस्याओं के चित्रण द्वारा नाटक के क्षेत्र में विविधता तथा सर्वांगीणता का प्रवेश हुआ।

विषय तथा शैली दोनों दृष्टियों से आधुनिक नाटककारों ने पाश्चात्य विचारधारा तथा नाट्य् शैली को पूर्ण रीति से अपनाया है। इस युग के नाटकों के बारे में उमेश शास्त्री लिखते हैं - "इन नाटकों में उपदेशात्मक वृत्ति नहीं है और न भारतीय संस्कृति के आदर्श परक मूल्यों की स्थापना का उद्देश्य ही अपितु यथार्थवादी दृष्टिकोण को स्वीकार कर समस्याओं का समाधान खोजा गया है। विवाह, दाम्पत्य जीवन, जातिभेद वर्ग संघर्ष आदि का विशद विवेचन हुआ है।"[27]

6· **एकांकी-नाटक**

एक ही अंक में समाप्त होने वाली नाटकीय कृति को एकांकी कही जाती है। आधुनिक हिन्दी एकांकी पर पश्चिम के नाट्यकारों - विशेषतः शॉ का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी एकांकी का प्रारंभ जयशंकर प्रसाद कृत "एक घूँट" एकांकी से माना जाता है। इसमें प्रणय और विवाह की समस्या को प्रस्तुत कर दिया है।

हिन्दी एकांकी-नाटक परम्परा विकसित करने में डॉ·रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, मिश्र, सेठ गोविंददास, उदयशंकर भट्ट, उपेंद्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, गणेशप्रसाद द्विवेदी, जगदीशचंद्र माथुर, तथा भगवतीचरण वर्मा आदि विद्वानों का योगदान रहा है।

डॉ·रामकुमार वर्मा ने "बादल की मृत्यु", "पृथ्वीराज की आँखे", "रेशमी टाई", "सप्तकिरण", "चारुमित्रा", "कौमुदी-महोत्सव", "ध्रुवतारिका", "शिवाजी", "कामकंदला", "औरंगजेब की आखरी रात", "विक्रमादित्य", "ऋतुराज" आदि पौराणिक, राजनीतिक तथा सामाजिक एकांकी लिखे। इनके नाटकों में उदारता, त्याग, क्षमा, दया, सेवा, बलिदान आदि आदर्शों को गांधी-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चेतना के रूप में दिखाया गया है। "डॉ·वर्मा के समस्यामूलक एकांकी-नाटकों में प्रेम, सैक्स, ईर्ष्या, संदेह, दम्भ, दुहरा व्यक्तित्व आदि से संम्बद्ध समस्याओं को उठाया गया है।"[28]

श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र ने "श्यामा", "सवा आठ बजे", "लाटरी" "रोशनी और आग", "प्रतिभा का विवाह", "आदम खोर", "फोटोग्राफर के सामने" तथा "कारवाँ" आदि सामाजिक एकांकी लिखे। इन एकांकियों में यौन-समस्या का स्वर अधिक स्पष्ट होता है।

सेठ गोविन्ददास ने "विश्वप्रेम", "बुद्ध की एक शिष्या", "ईद और होली", "जाति उत्थान", "वह मरा क्यों" आदि एकांकी लिखे। सेठजी के एकांकी नाटकों में समाज और देश की सामायिक स्थितियों को उभारा गया है। नारी-जीवन "विवाह और प्रेम", "दाम्पत्य जीवन", 'चुनाव', 'मिनिस्ट्री', हड़ताल आदि विभिन्न पक्षों को सेठजी के एकांकी नाटकों में निरूपित किया गया है।

उदयशंकर भट्ट ने "गिरती दीवारें", "पिशाचों का नाच", "बीमार का इलाज", "आत्मदान", "वापसी", "मन्दिर के द्वार पर", "नये मेहमान", "नया नाटक", "दो अतिथि", "धूमशिखा", "बाबूजी", "यह स्वतंत्रता का युग", "अपनी-अपनी खाट पर", "पर्दे के पीछे" आदि मनोवैज्ञानिक एकांकी नाटक लिखे। इनमें सामाजिक रूढ़िग्रस्तता तथा मानवीय हीन-भावना का यथार्थ चित्रण किया है।

उपेंद्रनाथ अश्क के "पापी", "लक्ष्मी का स्वागत", "अधिकार का रक्षक", "चरवाहे", "पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ", "चिलमन", "खिडकी", "चुम्बक", "चमत्कार", "देवताओं की छाया में", आदि एकांकी नाटकों में जीवन के यथार्थ को उभारा गया है। हास्य-व्यंग्य शैली में अश्कजी ने मनुष्य के दोहरे व्यक्तित्व को रेखाटा है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने "अशोक वन", "प्रलय के पंख पर", "एक दिन", "कावेरी में कमल", "बलहीन", "नारी का रंग", "स्वर्ग में विप्लव" आदि एकांकी-नाटक लिखें।

गणेशप्रसाद द्विवेदी ने "सुहाग बिन्दी" "दूसरा उपाय ही क्या है", "सर्वस्व समर्पण", "शर्माजी" आदि एकांकी नाटक लिखे। "द्विवेदी के एकांकी नाटकों में स्त्री के समर्पण", "ईर्ष्या", "प्रतिग्रहण", "प्रतिहिंसा" आदि भावों के साथ पुरुष

के मन की घृणा, दर्पण और सन्देह को अंकित किया गया है।"[29]

जगदीशचन्द्र माथुर ने "मेरी बाँसुरी", "भोर का तारा", "कलिंग-विजय", "रीढ़ की हड्डी", "मकडी का जाला", "खंडहर", "खिडकी की राह", "घोंसले", "कबूतर खाना", "भाषण" आदि एकांकी नाटकों का प्रणयन किया। इसमें समाज की विषमता, बाह्याडम्बर, एवं दुर्बल नैमिक मान्यताओं पर तीखा व्यंग्य है।

भगवतीचरण वर्मा के "सबसे बड़ा आदमी", "मैं और केवल मैं", "दो कलाकार" आदि एकांकी नाटकों में हास्य, व्यंग्य-वाग्वैदग्ध्य आदि विशेषताएँ मिलती हैं।

इसके अलावा चंद्रगुप्त विद्यालंकार के "मनुष्य की कींमत", "नवप्रभाव", डा·सत्येंद्र का "कुणाल", "बलिदान", चतुसेन शास्त्री "पन्नाधाय", हरिकृष्ण प्रेमी के "मालव प्रेम", "मान का मंदिर" आदि एकांकी नाटक लिखे गये। इसके अतिरिक्त अनेक रचनाकारों ने एकांकी नाटक लिखे हैं।

इस तरह युगबोध का यथार्थ चित्रण करते हुए मानवता को दिशा बोध प्रदान कराने के लिए सहज व सुगम विधा है। एकांकियों का सृजन स्वतंत्रता के बाद अधिक मात्रा में हुआ। विषय और शिल्प की सृष्टि से सफल एकांकी नाटक लिखे गये। "हिन्दी एकांकियों के प्रकाशन से नाटकीय अभिनय की दिशा में भी बहुत प्रेरणा मिली है। एक तो रंगमंच के अभाव से और दूसरे सिनेमा के प्रचार से हिन्दी नाटकों का अभिनय अभी तक समुचित रूप से नहीं किया जा सका है।"[39] किन्तु इसके प्रचार के माध्यम रंगमंच, रेडियो, तथा दूरदर्शन होने से एकांकी नाटक का विकास बढ़ता जा रहा है।

"हिन्दी एकांकी नाटक आज के जीवन की विसंगति प्रस्तुत करता है। जन-जीवन में काया एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था, जीवन के बदलते संदर्भ, मशीनी सभ्यता का विकास, संश्लिष्ट संस्कृतियों से उत्पन्न विकृतियों, वर्ग-संघर्ष की भावना, पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष, पाश्चात्य और भारतीय सभ्यता का

तुलनात्मक दृष्टिकोन आदि ने एकांकी को प्रभावित किया है।"[31]

गीति-नाट्य

गद्य के द्वारा मनुष्य की सभी रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति संभव नहीं है। इसलिए काव्य को अपनाया गया और गीतिनाट्य् की रचना होने लगी। गीतिनाट्य् का संपूर्ण कथानक गेय होता है। इसमें बाहरी क्रियाशीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक भावों का एक-दूसरे के साथ संघर्ष दिखाया जाता है।

प्रसाद ने "करूणालय" में गीतिनाट्य् शैली का प्रयोग पहली बार किया। इसके उपरान्त गीतिनाट्य् की रचना प्रचलित हुई। गीतिनाट्य् के बारे में शिवकुमार शर्मा लिखते हैं कि "इसकी कथायें पौराणिक हैं तथा वे प्रतीकात्मक हैं। ये कृतियाँ पर्याप्त मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक हैं। इन नाटकों के पात्र प्रतीकात्मक पद्धति के द्वारा अपने मानसिक अंतर्द्वंदों को स्पष्ट करते हैं। प्रकृति के रूप विधान द्वारा मानव मन की वृत्तियों का विश्लेषण किया गया है।"[32]

मैथिलीशरण गुप्त का "अनघ", सियारामशरण गुप्त का "उन्मुक्त", प्रेमी का "स्वर्ण विहान" निराला का "पंचवटी प्रसंग", भगवतीचरण वर्मा कृत "महाकाल", "द्रौपदी", सेठ गोविन्ददास का "स्नेह या स्वर्ग", सुमित्रानंदन पंत कृत "रजतशिखर", सौवर्ण, "शिल्पी", धर्मवीर भारती का "अंधायुग", गिरजाकुमार माथुर का "कल्पा-नार", "दंगा", "राम", "धरादीप", "इंदुमती", "व्यक्ति-मुक्त", "स्वर्ण-अमर", दिनकर कृत "उर्वशी" तथा उदयशंकर भट्ट के "कालिदास", "मत्स्यगंधा", "विश्वामित्र और राधा" आदि गीति-नाट्यों में सम-सामायिक जीवन की समस्याओं को उजागर किया है। अंधायुग आधुनिक, गीति-नाट्य् साहित्य की एक विशेष उपलब्धि है। शिल्पविधान की की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण रचना है। "उर्वशी" में साहित्य के लिए धर्म, प्रेम, श्रेय और सौंदर्य को अनिवार्य बताया है।

इस क्षेत्र में अधिक सफलता उदयशंकर भट्ट को है। रेडियो स्टेशन से इनके गीतिनाट्यों को प्रसारित किया गया है। "मत्स्यगंधा" में पौराणिक कथाओं द्वारा

तुलनात्मक दृष्टिकोन आदि ने एकांकी को प्रभावित किया है।"[31]

गीति-नाट्य

गद्य के द्वारा मनुष्य को सभी रागात्मक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति संभव नहीं है। इसलिए काव्य को अपनाया गया और गीतिनाट्य् की रचना होने लगी। गीतिनाट्य् का संपूर्ण कथानक गेय होता है। इसमें बाहरी क्रियाशीलता और संघर्ष के स्थान पर मानसिक भावों का एक-दूसरे के साथ संघर्ष दिखाया जाता है।

प्रसाद ने "करूणालय" में गीतिनाट्य् शैली का प्रयोग पहली बार किया। इसके उपरान्त गीतिनाट्य् की रचना प्रचलित हुई। गीतिनाट्य् के बारे में शिवकुमार शर्मा लिखते हैं कि "इसकी कथायें पौराणिक हैं तथा वे प्रतीकात्मक हैं। ये कृतियाँ पर्याप्त मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक हैं। इन नाटकों के पात्र प्रतीकात्मक पद्धति के द्वारा अपने मानसिक अंतर्द्वंदों को स्पष्ट करते हैं। प्रकृति के रूप विधान द्वारा मानव मन की वृत्तियों का विश्लेषण किया गया है।"[32]

मैथिलीशरण गुप्त का "अनघ", सियारामशरण गुप्त का "उन्मुक्त", प्रेमी का "स्वर्ण विहान" निराला का "पंचवटी प्रसंग", भगवतीचरण वर्मा कृत "महाकाल", "द्रौपदी", सेठ गोविन्ददास का "स्नेह या स्वर्ग", सुमित्रानंदन पंत कृत "रजतशिखर", सौवर्ण, "शिल्पी", धर्मवीर भारती का "अंधायुग", गिरजाकुमार माथुर का "कल्पा-नार", "दंगा", "राम", "धरादीप", "इंदुमती", "व्यक्ति-मुक्त", "स्वर्ण-अमर", दिनकर कृत "उर्वशी" तथा उदयशंकर भट्ट के कालिदास", "मत्स्यगंधा", "विश्वामित्र और राधा" आदि गीति-नाट्यों में सम-सामायिक जीवन की समस्याओं को उजागर किया है। अंधायुग आधुनिक, गीति-नाट्य् साहित्य की एक विशेष उपलब्धि है। शिल्पविधान की की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण रचना है। "उर्वशी" में साहित्य के लिए धर्म, प्रेम, श्रेय और सौंदर्य को अनिवार्य बताया है।

इस क्षेत्र में अधिक सफलता उदयशंकर भट्ट को है। रेडियो स्टेशन से इनके गीतिनाट्यों को प्रसारित किया गया है। "मत्स्यगंधा" में पौराणिक कथाओं द्वारा

आधुनिक नारी समस्या को सुलझाने का प्रयास किया है। "राधा" एक मधुर गीतों से भरा भाव-नाट्य् है। इन नाट्य्-गीतों में काव्यकला और नाट्य्कला का सुंदर समन्वय हुआ है। डा॰गणपति गुप्त भट्टजी के बारे में लिखते हैं - "उन्होंने अपने पात्रों की विभिन्न भावनाओं एवं उनके अंतर्द्वंद्व को सशक्त एवं संगीतात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।"[33]

इस तरह नाट्य्-विकास की दृष्टि से गीतिनाट्यों का विशेष सहयोग रहा है। डा॰शिवकुमार शर्मा ने लिखा है - "साहित्य की यह विधा, प्रवृत्ति, प्रगति, और जनकार्य की दृष्टि से साहित्य में अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकी है और यह मानव जीवन के आंतरिक पक्ष का रागात्मक चित्र प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम सिद्ध हो चुकी है। रेडियो इसके प्रसार और प्रचार के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ।[34]

रेडियो और दूरदर्शन नाटक :

सन् 1936 के आसपास ही हिन्दी एकांकियों को रेडियो नाटक का रूप दिया जाने लगा। इसमें पात्रों की संख्या कम, रंगमंचीय निर्देश का अभाव होता है। संक्षिप्त संवाद एवं घटनाओं की अभिव्यक्ति रहती है। दृश्यों का नियोजन तथा संगीत की सफल योजना रेडियो नाटक में सुगमता से की जाती है। नाट्य् कृतियों के प्रसार के लिए रेडियो नाटक उपयुक्त रहा है। हरिश्चंद्र खन्ना ने लिखा है - "घटना प्रधान नाटक की अपेक्षा विचार-प्रधान या वातावरण-प्रधान नाटक रेडियो के लिए अधिक उपयुक्त, अधिक सफल और प्रभावोत्पादक होता है। कारण यह है कि अरूप और सूक्ष्म जितनी सफलता से रेडियो द्वारा प्रसारित हो सकता है, उतना रूपायत से और स्थूल नहीं।"[35] इसी बात को ध्यान में रखकर रेडियो नाटकों की सृजना हुई। नाटककारों ने विभिन्न विषयों का समावेश अपने रेडियो नाटक में किया।

उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास, रामकुमार वर्मा, जगदीशचंद्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, विष्णु प्रभाकर, उपेंद्रनाथ अश्क, सत्येन शरत, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती आदि रचनाकारों के अपने नाटक आकाशवाणी से प्रसारित हो चुके हैं।

हास्य-व्यंग्य प्रधान रेडियो नाटकों की निर्मिती करनेवालों में प्रभाकर माचवे, अमृतलाल नागर, शौकत थानवी, जयनाथ नलिन, राजेंद्र सिंह बेदी, कृष्णचंद्र आदि की रचनाएँ सराहनीय हैं।

हिन्दी में इन ध्वनि-नाटकों का जन्म सन् 1937 में रेडियों से प्रसारित सर्वप्रथम हिन्दी ध्वनि रूपक "राधाकृष्ण" से हुआ। उदयशंकर भट्ट ने "गांधीजी का राम-राज्य", "धर्म-परम्परा", "एकला चलो रे", "अमर अर्चना", "मालती-माधव", "वन-महोत्सव", "मेघदूत", "कालीदास" आदि रेडियो नाटक लिखे। भगवतीचरण वर्मा ने "राख और चिंगारी", अश्क ने "पर्दा उठाओ और पर्दा गिराओ" आदि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक लिखे। उपेन्द्रनाथ अश्क के "असली रास्ते", "लक्ष्मी का स्वागत", "सुबह शाम" आदि रेडियो नाटक हैं।

गिरजाकुमार माथुर के "जन्म", "कैद", "पिकनिक", "लाऊड स्पीकर" बसंत की चाँदनी", अमृतलाल नागर के "अँधेरा सेठ बाँकेमल" आदि रेडियो नाटकों की रचना की। प्रभाकर माचवे ने "सत्यान्त","अपनी-अपनी ढपली," "कारकून", "पंचकन्या" और "क्या वह नारी है" आदि रेडियो नाटक लिखे। इनकी इन नाटकों के बारे में शांति स्वरूपजी लिखते हैं - "मनोविज्ञान की नवीनतम खोजोंका कलात्मक समावेश तथा सामाजिक विद्रुपताओं, मिथ्याडम्बर और कृत्रिम आचार-व्यवहार पर निर्मम व्यंग्य उनके ध्वनि-नाटकों की विशेषताएँ हैं।"[36]

रेडियो से प्रसारित नाटक हैं - हंसकुमार तिवारी के "पुकार", "झूठे सपने", राधाकृष्ण प्रसाद का "आवरण", विश्वम्भर मानव का "जीवन-साथी", जयनाथ नलिन का "नवाबी-काल", धर्मवीर भारती का "कलाकार", अज्ञेय का "वसंत", "पंथ," प्रो॰बृहस्पति के "चाणक्य", "संत कबीर", राजेंद्रसिंह बेदी का "पाँव की मोच", डॉ॰शंकर शेष का "खजुराहो का शिल्पी" आदि।

इस तरह आकाशवाणी द्वारा नाटक और उनके नाटककारों का नाम दूर देश, विदेश तक पहुँच जाता है। राष्ट्रीय कार्यक्रम में नाटकों का प्रसार हो जाता है। अतः नाट्य-विकास के लिए रेडियो नाटक एक सफल ध्वन्यात्मक नाटक सिद्ध हुआ है।

प्रतीक-नाटक

आधुनिक काल में पाश्चात्य नाटककार मेटरलिंक, इब्सन, दाप्टस्, मैन, स्ट्रिन्डवर्ग, बर्नाड शॉ, क्रिस्त्रोफर, लारेन्स, सिज आदि का प्रभाव यथार्थता के रूप

में प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भारतीय हिन्दी नाटकों में रही है। इस क्षेत्र के हिन्दी नाट्यकारों पर सबसे अधिक प्रभाव रविंद्रनाथ टैगोर का पड़ा। उनके "राजा", "अचलायमन", "डाक घर", "रक्त करबी" के हिन्दी अनुवाद से हिन्दी में प्रतीक-नाटकों की शैली पर प्रभाव पड़ा।

लक्ष्मीनारायण लाल कृत "मादा फैक्टस", "अंधा कुआँ", "सुखा सरोवर" और "तीन आँखोवाली मछली", "सुंदररस" आदि प्रतीक नाटक हैं। इन नाटकों में "कला की सुंदरता", "नया युग", "आज के मानव सौंदर्य की मिथ्या भ्रान्ति", आधुनिक समाज की समस्याओं से भ्रान्त मानव की मानसिक द्विविधा, आधुनिक आडम्बरपूर्ण प्रणयादि की निस्सारता आदि की अभिव्यक्ति प्रतीक के रूप में की गयी है।

अभयकुमार कृत "डूबते तारे", सुदर्शन बब्बर कृत "सब चलता है", उपेंद्रनाथ अश्क कृत "अलग--अलग रास्ते", "कैद और उड़ान" आदि प्रतीक नाटक हैं। पाश्चात्य नाटकों की देखा-देखी हिन्दी के सामाजिक और समस्या नाटकों में भी प्रतीकों का प्रयोग किया गया।

हिन्दी में प्रतीक के समान ही रूपक नाट्य् भी लिखे गये। जयशंकर प्रसाद कृत "कामना", "एक घूँट", पंत की "ज्योत्स्ना", वाजयपेयी कृत "छलना", शंभुनाथसिंह का "धरती और आकाश", सेठ गोविंददास का "नवरस" आदि रूपक नाट्य्-कृति है। इन रूपकों में मानव वृत्तियों के मानवीकृत रूप, स्वच्छंद प्रेम, जीवनदर्शन, आधुनिक समाज, सामाजिक एवं राजनीतिक चित्रण अहिंसा, आधुनिक यथार्थवादी जीवन और जगत् के संघर्षों, आदि की अभिव्यक्ति रूपकों के माध्यम से की गयी है।

आधुनिक काल में लक्ष्मीनारायण लाल का "सूर्यमुखी", मोहन राकेश कृत "आषाढ़ का एक दिन" तथा "लहरों के राजहंस", शंकर शेष कृत "नयी सभ्यता के नये नमूने", "एक और द्रोणाचार्य", "राक्षस", जगदीशचंद्र माथुर का "पहला राजा" आदि प्रतीक नाटक के सुंदर उदाहरण हैं।

हिन्दी समस्या नाटक का विकास :-

युरोप में समस्या नाटकों का प्रचलन रोमैंटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इब्सन ने नाटक-क्षेत्र में पदार्पण कर शेक्सपिअर की रोमानी भावनाओं के स्थान पर एक बौद्धिक चेतना उत्पन्न की। इससे प्रेरणा ग्रहण करके शॉ ने परंपरा और रोमानी भावनाओं का विरोध किया जिसका प्रभाव विश्वव्यापी हुआ और उसके नाटकों की गूँज देश-देशांतर में पहुँच गयी। हिन्दी समस्या नाटकों में भी इसका प्रभाव पडा। हिन्दी नाटककारों में इस नई विधा का प्रयोग सम-सामयिक जीवन की समस्या के रूप में चित्रित किया।

परिभाषा

समस्या नाटक आधुनिक युग की नवीनतम विधा है। पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने समस्या नाटक की परिभाषा दी है। रैम्सन के मत से "प्रत्येक महान् नाटक समस्या नाटक होता है।"[37] इसमें व्यक्ति और समाज का संघर्ष प्रस्तुत करते समय आदर्श की परवाह नहीं की जाती। पाश्चात्य नाटककारों ने समस्या नाटकों में विवाह के वाद भी उलझनों तथा विकृतियों का चित्रण किया है। समस्या नाटकों में विवाह के बाद की उलझनों तथा विकृतियों का चित्रण किया है। समस्या नाटकों में समाज का यथार्थ चित्रण और समाज के प्रश्नों को प्रस्तुत किया जाता है। बनार्ड शॉ ने इसकी परिभाषा दी है - "वह मानव की इच्छा और उसके परिवेश के बीच के संघर्ष का दृष्टांत रूप में प्रस्तुतीकरण है।"[38] सिडनी ग्रंडी ने नाटक के आधुनिक विशिष्ट रूप को 'Problem play'नाम दिया है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र अपनी भूमिका में लिखते हैं - "मैंने जो कुछ अनुभव किया है, देखा है, उसे इस नाटक के रूप में तुम्हारे सामने रख देता हूँ।"[39]

इसप्रकार समस्या नाटक की परिभाषाओं का संक्षिप्त अर्थ है - समसामयिक समाज के यथार्थ प्रश्नों का प्रस्तुतीकरण करना।

पाश्चात्य-साहित्य में समस्या नाटकों का उदय

समस्या नाटक का उद्भावक इब्सन को माना जाता है। इनके नाटकों में विचारों को महत्त्व दिया गया है, न कि घटनाओं की स्वाभाविकता को / इनके नाटक - "द पिलर्स ऑफ सोसाइटी", "ए डॉल्स हाऊस", "द गेस्ट", "द वाइल्ड डक" और "हेड्डा गैब्लर" आदि में समसामायिक जीवन की समस्याओं की नवीन वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक बुद्धिसापेक्ष की अभिव्यक्ति है। इनमें यौन-प्रकृति की वास्तविकता और परम्परावादी मूल्यों की विडम्बना की है। "इब्सेन के समस्या नाटकों का मूल स्वर रूढ़ि विध्वसंक विचार है। वैज्ञानिक रूढ़िवादी विश्वासों की विडम्बनाओं का उद्घाटन करता है। इससे मानवीय सम्बन्धों में उथल-पुथल उत्पन्न होती है, हमारे जाने-माने विचारों को एक धक्का-सा लगता है। हम पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों के बारे में नये सिरे से सोचने के लिए विवश कर दिए जाते हैं।"[40]

इसके बाद आगस्ट स्ट्रिण्डबर्ग ने "फादर", "कामरेडस", "मिस जूलिया" आदि समस्या नाटक लिखे। जर्मनी, रूसी और अमरिकी तथा अंग्रेजी साहित्य में भी समस्या नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ। अंग्रेजी साहित्य में पिन्रो और जोन्स को नवयुग के नाटक का प्रभाव-वाह माना जाता है। जोन्स के "सेन्टस एण्ड सिनर्स", समस्या नाटकों की शृंखला की प्रथम कड़ी स्वीकार किया गया है। पिन्रो के नाटक "द सेकण्ड मिसेज ट्रैक्वरे", "द प्राफ्लिगेट" आदि हैं। इनके द्वाराही समस्या नाटक- विकास को गति मिली और इब्सन के नाटकों में इसकी परिणति हुई है।

इसके उपरान्त बर्नार्ड शा ने अपने समस्या नाटकों में रूढ़ि -विध्वसंक एवं क्रांतिकारी विचारों को ही विशेष स्थान दिया है। शा द्वारा प्रणित "विंडोवर्स हाऊस", "मिसेज वारेन्स प्रोफेशन", "गेटिंग मैरेज", "मैन एण्ड सुपरमैन" आदि प्रसिद्ध समस्या-नाटक हैं। शा ने जीवन की प्रत्येक दिशा में दमन, शोषण और अन्याय का विरोध किया है। स्त्री-जीवन की समस्या की प्रधानता इनकी कृतियों में मिलती है। गाल्सवर्दी के समस्या नाटकों में भी सर्व सामान्य जीवन में लक्षित समसामयिक व्यक्ति और समाज का संघर्ष प्रकट होता है। इस प्रकार समस्या नाटकों का मूल वस्तुतः नाटककार के चिंतन एवं सृजन में अंतर्निहित एक विशेष बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। उनकी रचना के सृजन में यथार्थवादी और प्रकृतिवादी चिंतन प्रक्रिया लक्षित होती

समस्या नाटकों का उद्देश्य

समस्या नाटकों का मूल उद्देश्य समसामयिक जीवन के प्रश्नों को यथार्थता के रूप में प्रस्तुत करना और रूढ़ियों, पूर्वग्रहों, मिथ्या भावुकता को विरोध करके जो यथार्थ वास्तविक , आदर्शवादी जीवन के तथ्य होते हैं उसे अपनाता है। इस बारे में अपने विचार डा·माधाता ओझाजी लिखते हैं - "परस्पराबद्ध आदर्शों के प्रति हमारे पूर्वग्रहों, मिथ्या भावुकता या मोह को भंग करना, रूढ़ि विजड़ित जीवन के पक्षाघाती प्रभावों का उच्चाटन करना एवं सामाजिक परस्परताओं के बारे में प्रमाता को नये सिरे से सोचने-विचारने के लिए प्रेरित करना ही समस्या नाटक का मूलभूत उद्देश्य है।"[41] उन्होंने इस नाटक को रसाश्रयी नाटक न कहकर विचारश्रयी नाटक कहा है। समसामयिक समस्याओं को चित्रित करना भावनाओं की अपेक्षा बुद्धिवाद से हर समस्या का हल प्रस्तुत करना है। वस्तुतः समस्यात्मक नाटक में मनोरंजन नहीं होता और वह सामान्य बुद्धिवालों के लिए नहीं है। इनका उद्देश्य समस्या प्रस्तुत करके उस पर पाठक या दर्शक को विचार करने के लिए तैयार करना है। समस्या नाटकों का मूल उद्देश्य जीवन-संघर्ष का चित्रण है। जीवन की विषमताओं को प्रस्तुत करके पाठक या दर्शक की चिंतन-शक्ति जाग्रत करना समस्या नाटक का लक्ष्य है। संक्षेप में समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना है। रूढ़ि के पर्दे को फाडकर वास्तविक सत्य को प्रकट करना इसका प्रधान लक्ष्य होता है। समस्या नाटककार का उद्देश्य उन घटनाओं और तथ्यों का समूह तैयार करना होता है, जो इनके प्रतिपाद्य को, नाटकीय तर्क और संभावना की हत्या किये बिना यथासापेक्ष अभिव्यक्त कर सके। जीवन का कठोर सत्य ही इनकी कृति की प्रेरणा होती है।

समस्या नाटकों की प्रेरणा और उसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मीनारायग मिश्र ने लिखा है - "समस्या नाटकों की रचना विवशता की देन है, उसी प्रकार जैसे प्रेम दुनिया का रूप बदलने के लिए रचना नहीं होती, बल्कि सामाजिक जीवन जिन कठिनाइयों और खड़ढों से पार हो रहा है, उन्हीं में से एक यादों का रूप साहित्यकार खड़ा कर देता है। समस्या उठाना ही उसका काम है, समाधान प्रस्तुत करना नहीं। जो अभाव या परेशानी उसके भीतर होती है, उसका चित्र भी वह खींचता है पर अपने से स्वतंत्र होकर। मेरे नाटकों में यही दृष्टिकोण प्रमुख है।"[42]

समस्या नाटक के लक्षण

1· वर्तमान जीवन को रूपांतरित करते हुए समस्या नाटककार भौतिक या लौकिक जीवन का साँचा समाविष्ट करता है।

2· आदर्शवाद की उदात्त जीवन-कल्पना को आडम्बर मानता है।

3· समस्या नाटक को चेतना कर प्रत्यक्ष विरोध कल्पनावाद या स्वच्छंदतावाद से है।

4· समस्या नाटकों में समसामयिक जीवन का यथार्थ सत्य, अपने असल रूप में एक बौद्धिक ईमानदारी के साथ दिखलाया जाता है। इसमें नाटककार की दृष्टि व्यक्तिपरक न होकर वस्तुपरक होती है।

5· इसका मूल स्वर रूढ़ि-विध्वसंक एवं खंडनात्मक होता है और सत्य को प्रकट करता है।

6· इनका प्रभाव नैराश्य व्यंजक होता है। इसके पात्र सामान्य होते हैं।

7· संवाद योजना, यथार्थवादी रंगमंच का निर्वाह किया जाता है।

8· इसमें व्यक्ति परिस्थितियों का दास होता है।

9· इसमें बुद्धि के लिए भावना का बलिदान कर दिया जाता है।

10· मानव के अंतर्द्वंद का चित्रण रहता है।

हिन्दी समस्या - नाटक का स्वरूप

हिन्दी में समस्या नाटक का उद्भव 20 वीं शतीं के आरंभ से सन 1930 से हुआ है। इसके पूर्व भारतेन्दु युगीन नाटकों में रसनिष्पत्ति एवं मनोरंजन को महत्त्व दिया गया था। कुछ ऐतिहासिक नाटकों में समसामयिक समस्याओं को स्थान मिल गया है। हिन्दी में समस्या नाटकों की प्रवृत्ति पाश्चात्य साहित्य की देन है। सुरेशचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "आलोच्यकालीन नाटक की सर्वोत्कृष्ट युरोप की यथार्थवादी नाट्य् कला से

प्रभावित समस्या नाटक की उत्पत्ति है।"[43] इब्सन और शक्ति प्रेरणा तथा समसामयिक भारतीय जन-जीवन के चित्रण की लालसा ने मिश्रजी को समस्या नाटकों की रचना करने को प्रेरित किया। इस प्रकार लक्ष्मीनारायण मिश्रजी के "संन्यासी" नाटक से हिन्दी समस्या नाटक का अविर्भाव माना जाता है। अतिरंजिता भावुकता, अस्वाभाविक घटना, अवास्तविक चरित्रों का सृजन, काव्यमयी भाषा, गीतों और स्वगत कथनों की अमर्याद शैली के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया का भाव इसका मूलाधार है।

पाश्चात्य समस्या नाटकों का प्रभाव हिन्दी नाटकों पर होने पर भी हिन्दी समस्या नाटक का स्वरूप उससे भिन्न है। हिन्दी के नाटकों पर गांधीवादी जीवन-दर्शन की गहरी छाप है, जिसमें सुधारवादी और रचनात्मक प्रवृत्ति विद्यमान थी। हिन्दी के समस्या नाटकों ने समाज में उत्पन्न करनेवाले अंधविश्वासों का खंडन किया है। और जीवन के यथार्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है।

इस तरह हिन्दी के समस्या नाटककारों ने व्यावहारिक आदर्शवाद को अपनाया सामाजिक प्रश्नों की बौद्धिक व्याख्या यथार्थवादी ढंग से की। किन्तु उनके समाधान को आदर्शवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया। कुछ नाटकों में आदर्शवाद एवं रस की प्रतिष्ठा अनिवार्य रही है। किन्तु कुछ नाटकों में समस्या का स्पष्टीकरण कम दिखाई देता है।

इन्होंने वर्तमान समस्याओं को प्राधान्य दिया है, किन्तु इनके नाटकों में कथा की एक सूत्रता का अभाव है। इनके नाटकों में विचार तत्व को उतना महत्त्व नहीं मिला, जितना पाश्चात्य समस्या नाटकों में मिला है। हिन्दी समस्या नाटककार पाश्चात्य संस्कृति को अपनाया किंतु भारतीय संस्कृति का त्याग न कर सके। "हिन्दी के समस्या नाटककार प्राचीन और नवीन का समन्वय चाहते हैं, अतएवं बुद्धि और हृदय का अपेक्षित सामंजस्य स्थापित करने में भी वे सफल हो सके हैं।"[44]

हिन्दी में समस्या नाटक का आरंभिक प्रयोग

समस्या नाटक के उद्भव विकास की दृष्टि से कृपानाथ कृत "मणि गोस्वामी" (1929 ई.), घमानन्द बहुगुना कृत "समाज" (1930 ई.) और लक्ष्मीनारायण

मिश्र द्वारा "संन्यासी" (1930 ई.) की रचना के साथ ही हिन्दी में समस्या नाटकों का उदय हुआ। इन नाटकों में छुआछूत की सम-सामयिक समस्या पारिवारिक विघटन की समस्या एवं प्रेम की समस्या का चित्रण हुआ है।

डा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस नाट्य् शैली काप्रयोग प्रसादजी के "कामना" प्रतीक नाटक में माना है। प्रसाद के "ध्रुवस्वामिनी" में आधुनिक नारी के जीवन की एक समस्या का बौद्धिक विश्लेषण किया गया है। इसी समय लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या नाटकों का सृजन करते रहें। "लक्ष्मीनारायण मिश्र ने प्रस्तुत संक्रांतिकालीन चेतना का बौद्धिक दृष्टिकोण से पर्यवेक्षण किया है। अपने समस्या नाटकों में युगानुरूप क्रांतिकारी चेतना का अंतर्भाव करते हुए हिन्दी साहित्य में समस्या नाटक की नींव डाली है।"[45] समकालीन समस्याओं को समस्या नाटक की पाश्चात्य शैली में रूपान्तरित करने का प्रथम प्रयास मिश्रजी ने किया है। उनके नाटकों का मूल स्वर नारी समस्या है। व्यक्ति स्वातंत्र्य के परिप्रेक्ष्य में नारी समस्या का वे बौद्धिक चित्रण करते हैं। किंतु वैवाहिक संस्थान के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए समाधान को प्रस्तुत करते हैं।

हिन्दी में समस्या - नाटक का विकास

हिन्दी नाटक साहित्य में यथार्थमूलक चित्रण भारतेन्दु युग के प्रहसनों एवं सामाजिक नाटकों से उदय होता है। भारतेन्दु "प्रेम-जोगिनी", "भारत-दुर्दशा", और "अंधेर नगरी" में युग जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। भारतेन्दु मंडल के अन्य नाटककारों ने भी इसी को प्रस्तुत किया है। इनका दृष्टिकोण बौद्धिक की अपेक्षा भावात्मक ही अधिक रहा। भारतेन्दु के उपरान्त, "रामलीला", "धमुक्य यज्ञलीला", "नल-दमयंती", "उर्वशी", "उद्धव" जैसे नाटकों की रचना की गयी। जीवानंद शर्मा, हरिशंकर शर्मा, तुलसीदत्त, डा. सत्येंद्र आदि ने प्रहसन तथा यथार्थ नाटक लिखें। इनके बारे में डॉ. विनयकुमार लिखते हैं - "विवाह विषयक कुरीतियों जैसे बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह, बहु-विवाह, दहेज, कन्या-विक्रय आदि की ओर इन लेखकों ने विशेष रूप से ध्यान रखा।"[46]

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में स्त्री समस्या का चित्रण हुआ है। "कामना" "एक घूँट", "ध्रुवस्वामिनी", आदि प्रसाद के नाटकों में व्यक्ति और समाज की समस्या, विधवा-विवाह की समस्या चित्रित की गयी है। "एक घूँट" में प्रसादजी ने मुक्त प्रेम और संयमित प्रेम के संघर्ष को उपस्थित कर प्रेम के प्रकृत रूप की स्थापना की गयी है।

प्रसादोत्तर-काल में सही रूप में समस्या नाटक का प्रारंभ लक्ष्मीनारायण मिश्र के "सन्यासी" नाटक से होता है। इसलिए समस्या नाटक के आधुनिक जन्मदाता मिश्रजी माने जाते हैं। इसके उपरान्त मिश्रजी ने "राक्षस का मन्दिर", "मुक्ति का रहस्य", "राजयोग", "सिंदूर की होली", "आधी रात" आदि समस्या नाटकों की रचना की। इन नाटकों में सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण, देवी और मानवी वृत्तियों का चित्रण, चिरन्तन नारित्व एवं वैवाहिक समस्या, चिरन्तन नारीत्व की प्रेममूलक समस्या, सम-सामयिक जीवन का अंकन आदि समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

उपेंद्रनाथ अश्क मिश्रजी के उपरान्त श्रेष्ठ समस्या नाटककार हैं। इन्होंने "जय-पराजय", "स्वर्ग की झलक", "छठा बेटा", "कैद", "उडान", "अलग-अलग रास्ते", "भँवर" आदि सामाजिक, राजनीतिक समस्या प्रधान नाटक लिखें। मध्यवर्ग की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का विश्लेषण करना इनका प्रमुख विषय रहा है। "अश्क हिन्दी नाटक की बदलती हुई चेतना की उल्लेखनीय अभिव्यक्ति देनेवालों में पहले नाटककार हैं।"[47]

सेठ गोविन्ददास ने "सेवापथ", "विकास", "प्रकाश", "धीरे-धीरे", "महत्त्व किसे", "संतोष कहाँ", "दुःख क्यों", "हिंसा या अहिंसा" आदि सामाजिक तथा राजनीतिक समस्या नाटक लिखे। सेठ ने गांधीवादी विचारधारा को अपने नाटकों में अपनाया है। इन नाटकों में देश का वर्तमान संघर्ष एवं आधुनिक समस्या का चित्रण मिलता है।

पृथ्वीनाथ शर्मा ने "दुविधा" और "अपराधी" समस्या नाटक लिखे। इसमें आज की शिक्षित नारी के उस संशय और द्वंद का चित्रण एवं अपराधी की समस्या का चित्रण है। पं·उदयशंकर भट्ट के "कमला" तथा "अन्तहीन अन्त" में भी इसी समस्या को प्रस्तुत किया है। इनकी समस्याएँ विवाह और प्रेम से संबंधित हैं, जिनको उन्होंने बड़े सुलझे हुए ढ़ंग से अपनी प्रभावात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

हरिकृष्ण प्रेमी के "छाया और बंधन" में व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्या का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है, उग्रजी ने "डिक्टेटर", "चुम्बन", "अंधारा", गोविन्द वल्लभ पंत ने "अंगूर की बेटी", दयाशंकर पांड़ेय ने "एक ही रास्ता", जयनारायण राव ने "जीवन-संगिनी" प्रेमसहाय सिंह का "नवयुग" आदि सामाजिक समस्या नाटक हैं।

इस तरह हिन्दी समस्या नाटककारों ने राजनीतिक, पारिवारिक तथा सामाजिक समस्या नाटकों की सृष्टि की। इनके नाटकों पर इब्सन और शॉ का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। इनके नाटकों में विचार तत्व की प्रधानता है किन्तु हिन्दी नाटककारों ने बुद्धिवाद की व्याख्या की है किन्तु भावुकता का त्याग नहीं कर सके। भावुकता के धरातल पर यथार्थ पर सुंदर रूप हिन्दी समस्या नाटकों में मिलता है। इस प्रकार हिन्दी नाटक विकास में समस्या नाटक का योगदान अधिक रूप में रहा। सामाजिक समस्याप्रधान नाटक इस युग में अधिक लिखे गये। अतः इस विधा के प्रयोग से हिन्दी नाटक साहित्य को नयी गति प्राप्त हुई। आधुनिक काल में समस्या नाटक का द्रुत गति से हो रहा है जिसमें वर्तमान समस्या प्रमुख रूप से प्रस्तुत की है।

निष्कर्ष

नाटक यह प्राचीन विधा है। 'रासलीला नाटक', 'लोक-नाटक', 'रामायण', 'महाभारत', 'ऋग्वेद' आदि में नाटक का अविर्भाव हुआ है।

भारतेन्दु युग के पूर्व हिन्दी श्रेष्ठ नाट्य् की उपलब्धि नहीं हुई। भारतेन्दु हरिश्चंद्र हिन्दी के आद्य नाटककार हैं। इन्होंने प्रथमतः मौलिक, साहित्यिक एंव अनुदित नाटक लिखे। इनके सम्कालिन नाटककारों ने भी नाटक-विकास में विशेष योगदान दिया।

द्विवेदी युग में मौलिक नाटक कम लिखे गये। अतः अनूदित नाटकों की प्रधानतः अधिक रही।

हिन्दी इतिहास में प्रसाद-युग उत्थान का स्वर्ण-युग है। जयशंकर प्रसाद के आगमन से हिन्दी नाटक का विकास द्रुत गति से हुआ। प्रसाद ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक रचना कर भारतीय संस्कृति का सजीव चित्रण किया है। इस युग के अन्य नाटककार के रचनाओं में सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्वर प्रमुख रहा है।

प्रसादोत्तर काल हिन्दी नाटकों का समृद्धि का युग है। ऐतिहासिक, पौराणिक और समस्या-प्रधान नाटकों की रचना इस युग में हुई।

स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में सामाजिक समस्या-प्रधान नाटक अधिक लिखे गये। पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव इस काल में अधिक रहा। रचनाकारों की कलात्मक उपलब्धि इस युग की देन है। इनकी कृतियों में वर्तमान समस्या का चित्रण अधिक रूप में हुआ है। उसमें मनोविश्लेषणत्मक प्रवृत्तियों की प्रमुखता रही है।

एकांकी नाटक, गीति-नाट्य, रेडियो और दूरदर्शन नाटक, प्रतीक तथा समस्या एक आदि का अर्विभाव आधुनिक काल में हुआ। रंगमंचीयता एवं इनके माध्यम से नाटक का प्रचार देश - विदेश तक गूँजता रहा।

समस्या-नाटक आधुनिक युग की नवीनतम विधा है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र हिन्दी के सर्वप्रथम समस्या नाटककार हैं, जिनके कारण हिन्दी नाटक-साहित्य को एक नव-दिशा प्राप्त हुई।

आज का हिन्दी नाट्य-साहित्य साहित्यिक दृष्टि से प्रगत है।

संदर्भ-सूची

1· लक्ष्मीनारायण मिश्र के सामाजिक नाटक, भारतभूषण चड्ढा, पृ· 1-2

2· वही

3· नव्य हिन्दी नाटक, डा·सावित्री स्वरूप, पृ·264

4· आधुनिक हिन्दी नाटक और नाटय्कार, डा·रामकुमार गुप्त, पृ·97

5· आधुनिक हिन्दी नाटयकारोंके नाटय् सिद्धांत, निर्मला हेमंत, पृ·270

6· हिन्दी साहित्य का आदयतम् इतिहास, डा·मोहन अवस्थी, पृ·208

7· आधुनिक हिन्दी नाटकोंपर आंग्ल नाटकोंका प्रभाव, उर्पेद्रनारायण सिंह, पृ·178

8· हिन्दी नाटक : पुनर्मूल्यांकन, सत्येंद्र तनेजा, पृ·306

9· हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, डा·दशरथ ओझा, पृ·384

10· हिन्दी साहित्य का समीषात्मक इतिहास -आधुनिक काल, डा·वासुदेव सिंह,पृ·80

11· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·74

12· नव्य हिन्दी नाटक, डा·सावित्री स्वरूप, पृ·250

13· हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास, डा·दशरथ ओझा, पृ·347

14· हिन्दी नाटकोंपर पाश्चात्य प्रभाव, डा·श्रीपती शर्मा, पृ·191

15· समस्या नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र, डा·कर्णीसिंह भाटी, पृ·35

16· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·88

17· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·विनयकुमार, पृ·159

18· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·विनयकुमार, पृ·168

19· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·98

20· लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या नाटकों का स्वरूप विश्लेषण, डा·कर्णसिंह भाटी, पृ·31

21· हिन्दी के समस्या नाटक, डा·उमाशंकर सिंह, पृ·106

22· नाटक परंपरा परिवेश, डा·लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, पृ·37

23· चित्रकूट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ·1-2